JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य: संतुलन की सैद्धांतिक व्याख्या

साक्षी सिंह[1], अरुण कुमार साव [2]
[1] शोधार्थी, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
ईमेल-sakshisingh5498@gmail.com
[2] सहायक प्राध्यापक, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

□□□□□□
प्रस्तुत शोध–लेख योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य की केन्द्रीय अवधारणाओं का सैद्धांतिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। योग दर्शन के अनुसार चित्तवृत्तियों की अस्थिरता मानव दुःख, असंतोष और मानसिक अशांति का मूल कारण है, और इनके निरोध के लिए अभ्यास तथा वैराग्य को प्रमुख साधन माना गया है। अभ्यास निरंतर, दीर्घकालिक और श्रद्धायुक्त प्रयास के माध्यम से चित्त को स्थिर करने की प्रक्रिया है, जबकि वैराग्य आसक्ति, तृष्णा और विषय–आकर्षण से विवेकपूर्ण विरक्ति की अवस्था को व्यक्त करता है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि अभ्यास और वैराग्य परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक–दूसरे के पूरक हैं। केवल अभ्यास या केवल वैराग्य पर आधारित साधना एकांगी होकर संतुलन को बाधित करती है। लेख में दोनों के समन्वय को मध्यम मार्ग के रूप में व्याख्यायित किया गया है, जो चित्त–शुद्धि और आत्मबोध की ओर ले जाता है। साथ ही, आधुनिक उपभोक्तावादी समाज, मानसिक तनाव, शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में अभ्यास–वैराग्य की प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया गया है। अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि योग दर्शन में संतुलन की यह अवधारणा आज के जीवन–संदर्भ में भी अत्यंत उपयोगी और सार्थक है।

बीज-शब्द: योग दर्शन, अभ्यास, वैराग्य, चित्तवृत्ति निरोध, संतुलन, मध्यम मार्ग

1. प्रस्तावना

योग दर्शन भारतीय दार्शनिक परंपरा की एक अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और व्यवस्थित धारा है, जिसका मूल उद्देश्य मानव जीवन को आंतरिक शांति, संतुलन और आत्मबोध की ओर उन्मुख करना है। यह दर्शन केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव के संपूर्ण मानसिक, नैतिक और व्यवहारिक जीवन को अनुशासित करने का एक व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करता है। भारतीय दर्शन की विविध शाखाओं में योग दर्शन का विशिष्ट स्थान इसलिए है क्योंकि यह सैद्धांतिक विवेचन के साथ-साथ साधना-पद्धति को भी समान महत्व देता है। पतंजलि योग का केंद्रीय लक्ष्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं— **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" (योगसूत्र 1.2)**[1]; अर्थ: योग चित्त की वृत्तियों का निरोध (नियमन/शमन) है। यह सूत्र संकेत देता है कि योग का प्रयोजन केवल शरीर-स्वास्थ्य नहीं, बल्कि चित्त को स्थिर करके चेतना को उसके मूल स्वरूप में प्रतिष्ठित करना है।

योग दर्शन के अनुसार मानव जीवन की मूल समस्या चित्तवृत्ति है। चित्त निरंतर विचारों, इच्छाओं, स्मृतियों और भावनाओं की तरंगों से घिरा रहता है, जिसके कारण मन स्थिर नहीं रह पाता। इसी कारण व्यक्ति दुःख, अशांति, असंतोष और मानसिक तनाव की ओर प्रवृत्त होता है। पतंजलि इस स्थिति के परिणाम को स्पष्ट करते हैं— **"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" (योगसूत्र 1.3);** अर्थ: तब (चित्तवृत्तियों के निरोध होने पर) द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। और जब निरोध नहीं होता[2], तब— **"वृत्तिसारूप्यमितरत्र" (योगसूत्र 1.4);** अर्थ: अन्य अवस्था में द्रष्टा वृत्तियों के साथ तादात्म्य कर लेता है।

अर्थात् मन की चंचल वृत्तियाँ ही वह कारण हैं जिनसे व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर बाह्य विषयों में उलझ जाता है। आधुनिक जीवन में यह समस्या और भी गहन हो गई है, जहाँ तीव्र प्रतिस्पर्धा, भौतिकतावाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने चित्त को अधिक विक्षिप्त बना दिया है। इसलिए योग दर्शन मानता है कि जब तक चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं होता, तब तक आत्मबोध और मानसिक शांति संभव नहीं है।

चित्तवृत्ति निरोध के साधनों में अभ्यास और वैराग्य को योग दर्शन में विशेष स्थान प्राप्त है। पतंजलि स्पष्ट रूप से कहते हैं— **"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः" (योगसूत्र 1.12);** अर्थ: अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उन (चित्तवृत्तियों) का निरोध होता है। यहाँ अभ्यास निरंतर प्रयास, अनुशासन और धैर्य का प्रतीक है, जिसके माध्यम से साधक मन को एकाग्र और नियंत्रित करने का

अभ्यास करता है।[3] पतंजलि अभ्यास की विशेषताओं को भी बताते हैं— "**तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः" (योगसूत्र 1.13)** तथा **"स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढभूमिः" (योगसूत्र 1.14)**।

वहीं वैराग्य आसक्ति, तृष्णा और विषय-आकर्षण से विवेकपूर्ण विरक्ति की अवस्था है। पतंजलि कहते हैं— **"दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्" (योगसूत्र 1.15);** अर्थ: देखे हुए (संसारिक) और सुने हुए (शास्त्रीय/स्वर्गीय) विषयों के प्रति तृष्णा-रहित होकर इंद्रियों पर वशीकरण—इसे वैराग्य कहा गया है।[4] अर्थात् वैराग्य का तात्पर्य संसार का पलायन नहीं, बल्कि विषयों के प्रति तृष्णा का क्षय और विवेकपूर्ण तटस्थता है।

अभ्यास और वैराग्य का महत्व केवल साधना के क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के समग्र संतुलन से जुड़ा हुआ है। केवल अभ्यास पर बल देने से कठोरता, अहंकार या मानसिक तनाव उत्पन्न हो सकता है, जबकि केवल वैराग्य पर आधारित जीवन निष्क्रियता, पलायन या दायित्व-विमुखता की ओर ले जा सकता है। इसलिए योग दर्शन में इन दोनों के संतुलन पर विशेष जोर दिया गया है।[5] अभ्यास जहाँ मन को स्थिर करता है, वहीं वैराग्य मन को विक्षेपित करने वाले कारणों से अलग करता है; इस प्रकार दोनों परस्पर पूरक हैं और एक-दूसरे के बिना अधूरे माने जाते हैं।

इस अध्ययन की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि समकालीन समाज में योग को प्रायः केवल शारीरिक व्यायाम या स्वास्थ्य-साधन के रूप में देखा जा रहा है, जबकि उसके गहन दार्शनिक आधारों की उपेक्षा हो रही है। अभ्यास और वैराग्य की अवधारणाओं को सतही रूप में ग्रहण करने के कारण योग का मूल उद्देश्य विकृत हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य की सैद्धांतिक व्याख्या करना, उनके पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना तथा संतुलन की उस अवधारणा को रेखांकित करना है, जो मानव जीवन को मानसिक शांति, नैतिक अनुशासन और आत्मिक उन्नति की दिशा में अग्रसर कर सकती है।[6] इस प्रकार यह अध्ययन न केवल दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि आधुनिक जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

अभ्यास और वैराग्य की परिभाषाः

1. अभ्यास

अभ्यास का अर्थ है नियमित रूप से किसी भी क्रिया, विचार या सिद्धांत का निरंतर अभ्यास करना। योग में अभ्यास का तात्पर्य है मन को एकाग्रता के साथ नियंत्रित करना और उसे ध्यान के उच्चतम लक्ष्य की ओर निर्देशित करना। यह निरंतर, अनुशासित और धैर्यपूर्ण प्रयास से ही संभव है। अभ्यास के बिना चित्त की अस्थिर वृत्तियों को नियंत्रित करना कठिन है।[7] योगसूत्र 1.13 में अभ्यास को चित्त की स्थिरता हेतु निरंतर प्रयत्न के रूप में परिभाषित किया गया है।

2. वैराग्य

वैराग्य का अर्थ सांसारिक वस्तुओं और भोगों के प्रति आसक्ति का क्षय है। यह मन की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति भौतिक सुखों और इच्छाओं से बँधा हुआ नहीं रहता। वैराग्य का तात्पर्य संसार का त्याग नहीं, बल्कि कर्तव्यों का पालन करते हुए भी विषय–आसक्ति से मुक्त रहना है।[8] वैराग्य के अभाव में मन बार-बार इच्छाओं और भोगों की ओर आकर्षित होकर अस्थिर बना रहता है। पतंजलि ने वैराग्य को विषयों के प्रति तृष्णा-रहित अवस्था के रूप में परिभाषित किया है (योगसूत्र 1.15) ।

भगवद्गीता में अभ्यास और वैराग्य

भगवद्गीता के अध्याय 6, श्लोक 35 में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मन को वश में करना कठिन है, लेकिन यह संभव है यदि अभ्यास और वैराग्य का पालन किया जाए—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अर्थ: हे महाबाहु अर्जुन, मन निश्चय ही चंचल है और उसे वश में करना कठिन है, किंतु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे नियंत्रित किया जा सकता है।[9] यह श्लोक स्पष्ट करता है कि मन-नियंत्रण के लिए केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं, बल्कि निरंतर अभ्यास और विवेकपूर्ण विरक्ति अनिवार्य है।

इस श्लोक के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण यह स्पष्ट करते हैं कि मन को नियंत्रित करना सरल कार्य नहीं है, क्योंकि वह स्वभावतः चंचल होता है। किंतु अभ्यास द्वारा मन को बार-बार लक्ष्य की ओर लाया जा सकता है और वैराग्य द्वारा उसे विषयों की ओर भटकने से रोका जा सकता है।

अभ्यास और वैराग्य का सामंजस्य संबंध

मन को नियंत्रित करने और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए अभ्यास और वैराग्य—दोनों का समान रूप से आवश्यक होना योग दर्शन की मूल शिक्षा है।[10] अभ्यास से व्यक्ति में नियमितता, धैर्य और अनुशासन का विकास होता है, जबकि वैराग्य उसे भौतिक इच्छाओं और आसक्तियों से मुक्त करता है, जिससे मन को सही दिशा में केंद्रित करना संभव होता है।

यदि केवल अभ्यास किया जाए और वैराग्य का अभाव हो, तो मन पुनः विषयों की ओर आकर्षित हो जाता है। इसी प्रकार यदि केवल वैराग्य हो और अभ्यास न हो, तो साधना निष्क्रिय और अस्थिर बन जाती है।[11] अतः योग दर्शन अभ्यास और वैराग्य के संतुलित समन्वय पर विशेष बल देता है।

जीवन में अभ्यास और वैराग्य का महत्व

मन की शांति के लिए अभ्यास और वैराग्य का संतुलन अत्यंत आवश्यक है। अभ्यास से मन में स्थिरता आती है, जबकि वैराग्य इच्छाओं की अति से मुक्ति प्रदान करता है।[12] दोनों के समन्वय से व्यक्ति मानसिक शांति और संतुलन का अनुभव करता है। चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र हो या सांसारिक जीवन, निरंतर अभ्यास और इच्छाओं से मुक्त होने की भावना—दोनों ही सफलता के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।[13] अध्यात्म में यह संतुलन आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा में ले जाता है।

अभ्यास से व्यक्ति के मन और भावनाओं में स्थिरता आती है, जबकि वैराग्य से बाहरी संसार की अस्थायी वस्तुओं के प्रति निर्लिप्तता उत्पन्न होती है। इससे जीवन में संतुलन बना रहता है।[14] वास्तव में, चंचल मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य—दोनों का संयुक्त प्रयोग आवश्यक है, क्योंकि चंचलता को केवल स्थिरता से ही शांत किया जा सकता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध–अध्ययन के उद्देश्य योग दर्शन की मूल अवधारणाओं को गहराई से समझना तथा अभ्यास और वैराग्य के संतुलित स्वरूप को सैद्धांतिक रूप में स्पष्ट करना है। इन उद्देश्यों को निम्नलिखित बिंदुओं में विभाजित किया जा सकता है—

1. **योग दर्शन में अभ्यास की अवधारणा का विश्लेषण करना**
इस अध्ययन का प्रथम उद्देश्य योग दर्शन में अभ्यास की संकल्पना का दार्शनिक एवं व्यवहारिक विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत अभ्यास की परिभाषा, स्वरूप, गुण तथा चित्तवृत्ति निरोध में उसकी भूमिका को स्पष्ट किया जाएगा, जिससे यह समझा जा सके कि निरंतर और अनुशासित प्रयास किस प्रकार मानसिक स्थिरता प्रदान करता है।
2. **वैराग्य की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करना**
अध्ययन का दूसरा उद्देश्य वैराग्य की अवधारणा को उसके दार्शनिक संदर्भ में समझाना है। इसमें वैराग्य के अर्थ, उसके प्रकार तथा आसक्ति और तृष्णा से मुक्ति की प्रक्रिया का विवेचन किया जाएगा, ताकि वैराग्य को केवल त्याग नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के रूप में स्थापित किया जा सके।
3. **अभ्यास और वैराग्य के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना**
तीसरा उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि अभ्यास और वैराग्य परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। इस संदर्भ में यह दिखाया जाएगा कि किस प्रकार दोनों का समन्वय साधक को मानसिक संतुलन और आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है।
4. **दोनों के संतुलन की सैद्धांतिक रूपरेखा विकसित करना**
इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य अभ्यास और वैराग्य के संतुलित प्रयोग की सैद्धांतिक रूपरेखा प्रस्तुत करना है। इसमें यह प्रतिपादित किया जाएगा कि संतुलन के अभाव में साधना या जीवन–पथ एकांगी हो जाता है, जबकि संतुलित दृष्टिकोण समग्र विकास को संभव बनाता है।
5. **आधुनिक जीवन के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना**
अध्ययन का अंतिम उद्देश्य आधुनिक, भौतिकतावादी और तनावपूर्ण जीवन–परिस्थितियों के संदर्भ में अभ्यास और वैराग्य की प्रासंगिकता[15] का मूल्यांकन करना है। इसके माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया जाएगा कि योग दर्शन की ये अवधारणाएँ आज भी मानसिक शांति, नैतिक संतुलन और जीवन–संतोष प्राप्त करने में कितनी उपयोगी और सार्थक हैं।

3. शोध–पद्धति

प्रस्तुत शोध–अध्ययन की प्रकृति सैद्धांतिक एवं विश्लेषणात्मक है। इसका उद्देश्य योग दर्शन में अभ्यास[16] और वैराग्य की अवधारणाओं[17] का दार्शनिक विवेचन करते हुए उनके पारस्परिक संबंध और संतुलन की सैद्धांतिक संरचना को स्पष्ट करना है। यह अध्ययन अनुभवजन्य या क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित न होकर शास्त्रीय ग्रंथों और विद्वानों की व्याख्याओं के गहन अध्ययन पर केंद्रित है। अतः इसमें तर्क, व्याख्या और दार्शनिक विश्लेषण को प्रमुख स्थान दिया गया है।

4. योग दर्शन का सैद्धांतिक आधार

योग दर्शन भारतीय दार्शनिक परंपरा की उन प्रमुख शाखाओं में से एक है, जो मानव जीवन को आंतरिक शुद्धि, मानसिक संतुलन और आत्मबोध की दिशा में उन्मुख करती है। इसका सैद्धांतिक आधार मन, चेतना और आचरण के सूक्ष्म विश्लेषण पर टिका हुआ है।[18] योग केवल साधना–पद्धति नहीं, बल्कि जीवन को समझने और व्यवस्थित करने का एक समग्र दार्शनिक दृष्टिकोण है।

योग की परिभाषा एवं लक्ष्य

योग दर्शन में योग की सर्वमान्य परिभाषा चित्तवृत्ति निरोध के संदर्भ में प्रस्तुत की जाती है। योग का लक्ष्य मन की चंचलता को नियंत्रित कर चित्त को स्थिर अवस्था में स्थापित करना है, जिससे साधक अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर सके। इस दृष्टि से योग का उद्देश्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य या मानसिक विश्राम नहीं, बल्कि आत्मिक मुक्ति और अंतःकरण की शुद्धि है।[19] योग दर्शन यह मानता है कि जब मन विषयों से मुक्त होकर स्थिर होता है, तब चेतना अपने मूल स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाती है।

चित्त, वृत्ति और निरोध की अवधारणा

योग दर्शन में चित्त को मन, बुद्धि और अहंकार के समन्वित रूप के रूप में समझा जाता है। चित्त निरंतर विभिन्न प्रकार की वृत्तियों—जैसे विचार, स्मृति, कल्पना और भावनाओं—से प्रभावित रहता है। ये वृत्तियाँ ही व्यक्ति के अनुभव, व्यवहार और दुःख–सुख का आधार बनती हैं। जब चित्त वृत्तियों से आच्छादित रहता है, तब वह अस्थिर और विक्षिप्त होता है।[20] निरोध का अर्थ इन

वृत्तियों का दमन नहीं, बल्कि उन्हें नियंत्रित कर शांत अवस्था में लाना है। चित्तवृत्ति निरोध की यह प्रक्रिया ही योग का मूल सार मानी जाती है।

साधना–पथ में संतुलन का महत्व

योग दर्शन में साधना–पथ को एक संतुलित मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ अतिशय तप या पूर्ण निष्क्रियता—दोनों को ही बाधक माना गया है। साधना में संतुलन का तात्पर्य यह है कि साधक न तो केवल कठोर अभ्यास में उलझे और न ही केवल विरक्ति के नाम पर जीवन–कर्तव्यों से विमुख हो। अभ्यास और वैराग्य के संतुलित प्रयोग से ही चित्त को स्थिर किया जा सकता है। यह संतुलन साधक को मानसिक दृढ़ता, विवेक और आत्मसंयम प्रदान करता है तथा उसे एकांगी दृष्टिकोण से मुक्त कर समग्र विकास की ओर अग्रसर करता है।[21] इस प्रकार योग दर्शन का सैद्धांतिक आधार संतुलन, अनुशासन और आत्मबोध की त्रिवेणी पर आधारित है।

5. अभ्यास की अवधारणा

योग दर्शन में अभ्यास को साधना–पथ का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधार माना गया है। यह वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से साधक अपने चित्त को नियंत्रित करने, स्थिर करने और अनुशासित करने का निरंतर प्रयास करता है।[22] अभ्यास केवल किसी एक समय की क्रिया नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक स्तर पर सतत् जागरूकता और संयम की साधना है।

अभ्यास की परिभाषा

योग दर्शन के अनुसार अभ्यास का तात्पर्य उस निरंतर प्रयास से है, जिसके द्वारा चित्त को स्थिर अवस्था में स्थापित किया जाता है। यह प्रयास मन को बार–बार विषयों से हटाकर एकाग्रता और सजगता की ओर लाने की प्रक्रिया है। अभ्यास में शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक—तीनों स्तरों पर अनुशासन निहित होता है।[23] इस प्रकार अभ्यास साधक को अस्थिरता और चंचलता से मुक्त कर आत्मिक स्थिरता की दिशा में अग्रसर करता है।

अभ्यास के गुण : दीर्घकालिकता, निरंतरता और श्रद्धा

अभ्यास को प्रभावी बनाने के लिए उसमें कुछ मूलभूत गुणों का होना आवश्यक है। दीर्घकालिकता का अर्थ है कि अभ्यास क्षणिक उत्साह पर आधारित न होकर लंबे समय तक किया जाए। निरंतरता अभ्यास की वह विशेषता है, जो साधक को नियमित रूप से साधना में प्रवृत्त रखती है और मानसिक आलस्य को दूर करती है। वहीं श्रद्धा अभ्यास को केवल यांत्रिक प्रक्रिया न बनाकर उसे आंतरिक विश्वास और समर्पण से जोड़ती है।[24] इन तीनों गुणों के अभाव में अभ्यास अपूर्ण और निष्फल हो जाता है।

मानसिक अनुशासन में अभ्यास की भूमिका

अभ्यास का प्रमुख उद्देश्य मानसिक अनुशासन की स्थापना करना है। निरंतर अभ्यास से मन की चंचल प्रवृत्तियाँ धीरे–धीरे नियंत्रित होने लगती हैं और चित्त एकाग्रता की ओर अग्रसर होता है।[25] अभ्यास मन को संयमित करने के साथ–साथ उसे सजग और स्थिर बनाता है। इससे विचारों की अनावश्यक भीड़ कम होती है और साधक में आत्म–नियंत्रण की क्षमता विकसित होती है।

साधक के व्यक्तित्व पर प्रभाव

अभ्यास का प्रभाव केवल साधना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह साधक के संपूर्ण व्यक्तित्व को रूपांतरित करता है।[26] नियमित और संतुलित अभ्यास से साधक में धैर्य, दृढ़ता, आत्मविश्वास और विवेक का विकास होता है। उसका व्यवहार अधिक संतुलित, शांत और उत्तरदायी बनता है। इस प्रकार अभ्यास साधक के व्यक्तित्व को परिष्कृत कर उसे आत्मिक उन्नति और जीवन–संतुलन की दिशा में ले जाता है।

6. वैराग्य की अवधारणा

योग दर्शन में वैराग्य को चित्तवृत्ति निरोध का दूसरा महत्वपूर्ण साधन माना गया है। जहाँ अभ्यास मन को स्थिर करने का निरंतर प्रयास है, वहीं वैराग्य उन कारणों से दूरी बनाता है जो मन को विचलित और अस्थिर करते हैं।[27] वैराग्य का अभिप्राय संसार या कर्म से पलायन नहीं, बल्कि विषयों के प्रति संतुलित और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करना है।

वैराग्य की परिभाषा

वैराग्य का सामान्य अर्थ विषयों से विरक्ति समझा जाता है, किंतु योग दर्शन में इसका अर्थ अधिक व्यापक और सूक्ष्म है। वैराग्य वह अवस्था है जिसमें साधक इंद्रिय–विषयों के प्रति आसक्ति और आकर्षण से मुक्त होकर उन्हें तटस्थ भाव से देखने लगता है।[28] यह त्याग की बाह्य प्रक्रिया न होकर आंतरिक चेतना का परिवर्तन है, जहाँ इच्छाएँ और तृष्णाएँ मन पर अपना अधिकार खो देती हैं।

विषय–वैराग्य एवं पर–वैराग्य

योग दर्शन में वैराग्य को दो स्तरों पर समझा गया है—विषय–वैराग्य और पर–वैराग्य। विषय–वैराग्य में साधक भौतिक विषयों और भोगों के प्रति अपनी आसक्ति को नियंत्रित करता है, किंतु उनमें पूर्णतः लिप्त होने से बचता है। पर–वैराग्य इससे उच्च अवस्था है, जहाँ साधक सूक्ष्म इच्छाओं और मानसिक संस्कारों से भी ऊपर उठ जाता है।[29] इस अवस्था में मन गहन शांति और विवेक से युक्त हो जाता है।

आसक्ति, तृष्णा और वैराग्य

आसक्ति और तृष्णा मानव मन की वे प्रवृत्तियाँ हैं, जो चित्त को निरंतर अस्थिर बनाए रखती हैं। इंद्रिय–सुख की लालसा और प्राप्ति की अनवरत इच्छा मन को संतोषहीन बनाती है।[30] वैराग्य इन प्रवृत्तियों का दमन नहीं करता, बल्कि उनके प्रति जागरूकता उत्पन्न कर उन्हें शिथिल करता है। इस प्रकार वैराग्य मन को स्वतंत्र और संतुलित बनाता है।

वैराग्य का आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष

आध्यात्मिक दृष्टि से वैराग्य आत्मबोध की ओर ले जाने वाला मार्ग है, क्योंकि यह साधक को बाह्य आकर्षणों से हटाकर अंतर्मुखी बनाता है।[31] मनोवैज्ञानिक स्तर पर वैराग्य तनाव, भय और असंतोष को कम करने में सहायक होता है। जब मन आसक्ति से मुक्त होता है, तब उसमें स्थिरता और शांति का विकास होता है। इस प्रकार वैराग्य साधक के मानसिक स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उन्नति—दोनों के लिए अनिवार्य तत्व सिद्ध होता है।

7. अभ्यास और वैराग्य का पारस्परिक संबंध

योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य को चित्तवृत्ति निरोध के दो अनिवार्य और परस्पर पूरक साधन माना गया है। इनमें से किसी एक को अलग कर देखने से साधना की प्रक्रिया अधूरी और असंतुलित हो जाती है।[32] योग दर्शन का मूल आग्रह द्वंद्व नहीं, बल्कि समन्वय है, जहाँ निरंतर प्रयास और विवेकपूर्ण विरक्ति एक–दूसरे को संतुलित करते हैं।

एकांगी दृष्टिकोण की सीमाएँ

यदि साधना में केवल अभ्यास पर बल दिया जाए और वैराग्य की उपेक्षा की जाए, तो साधक बाह्य अनुशासन में तो प्रवीण हो सकता है, किंतु आंतरिक आसक्तियाँ बनी रहती हैं। इसके विपरीत, केवल वैराग्य पर आधारित दृष्टिकोण साधक को निष्क्रियता, पलायन या जीवन–दायित्वों से विमुख कर सकता है।[33] इस प्रकार एकांगी दृष्टिकोण न तो चित्त की पूर्ण शुद्धि कर पाता है और न ही संतुलित जीवन–दृष्टि प्रदान करता है।

अभ्यास–प्रधान और वैराग्य–प्रधान साधना की समस्याएँ

अभ्यास–प्रधान साधना में कठोर अनुशासन, अत्यधिक प्रयास और उपलब्धि–भाव के कारण अहंकार, मानसिक तनाव या थकान उत्पन्न होने की संभावना रहती है।[34] वहीं वैराग्य–प्रधान साधना में यदि अभ्यास का अभाव हो, तो साधक की विरक्ति केवल वैचारिक स्तर पर रह जाती है और व्यवहार में शिथिलता, उदासीनता या निष्क्रियता दिखाई देने लगती है। दोनों ही स्थितियाँ साधना के उद्देश्य से विचलन उत्पन्न करती हैं।

द्वंद्व से समन्वय की ओर

योग दर्शन अभ्यास और वैराग्य को परस्पर विरोधी न मानकर उन्हें एक ही साधना–प्रक्रिया के दो पक्ष मानता है। अभ्यास मन को स्थिर करने का साधन है, जबकि वैराग्य मन को विचलित करने वाले कारणों से मुक्त करता है। जब दोनों का समन्वय होता है, तब साधक न तो प्रयास के भार से दबता है और न ही विरक्ति के नाम पर जीवन से कटता है।[35] इस समन्वित दृष्टिकोण से ही चित्त की शुद्धि, मानसिक संतुलन और आत्मिक उन्नति संभव होती है।

8. संतुलन की सैद्धांतिक व्याख्या

योग दर्शन का मूल आग्रह संतुलन पर आधारित है, जहाँ साधना न तो अतिशय प्रयास की ओर झुकती है और न ही पूर्ण विरक्ति की ओर। अभ्यास और वैराग्य का समन्वय ही वह सैद्धांतिक आधार है, जिसके माध्यम से चित्तवृत्ति निरोध को व्यावहारिक और स्थायी रूप प्रदान किया जाता है।[36] यह संतुलन साधक को एकांगी दृष्टिकोण से मुक्त कर समग्र आत्मिक विकास की ओर ले जाता है।

अभ्यास–वैराग्य का समन्वित मॉडल

अभ्यास–वैराग्य का समन्वित मॉडल इस सिद्धांत पर आधारित है कि निरंतर प्रयास और विवेकपूर्ण विरक्ति एक–दूसरे के पूरक हैं। अभ्यास साधक को मानसिक अनुशासन, एकाग्रता और दृढ़ता प्रदान करता है, जबकि वैराग्य उसे आसक्ति, तृष्णा और विषय–आकर्षण से मुक्त रखता है।[37] इस मॉडल में अभ्यास दिशा देता है और वैराग्य सीमाएँ निर्धारित करता है। दोनों के संतुलन से साधना सहज, स्थिर और फलदायी बनती है।

मध्यम मार्ग की अवधारणा

योग दर्शन का संतुलन–सिद्धांत मध्यम मार्ग की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। मध्यम मार्ग का आशय यह है कि साधक न तो भोग–प्रधान जीवन में लिप्त हो और न ही कठोर तप या पूर्ण त्याग की ओर प्रवृत्त हो।[38] अभ्यास और वैराग्य का संतुलन साधक को जीवन के कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी आंतरिक शांति और विवेक बनाए रखने की क्षमता प्रदान करता है। यह मार्ग अतिवाद से बचाकर संतुलित और यथार्थ जीवन–दृष्टि विकसित करता है।

चित्त–शुद्धि एवं आत्मबोध में संतुलन की भूमिका

चित्त–शुद्धि योग दर्शन का प्रमुख लक्ष्य है और यह केवल संतुलित साधना से ही संभव है। अभ्यास चित्त को स्थिर करता है, जबकि वैराग्य चित्त की अशुद्धियों—जैसे आसक्ति और तृष्णा—को क्षीण करता है। जब दोनों का संतुलन स्थापित होता है, तब चित्त स्वच्छ और निर्मल हो जाता है।[39] ऐसी अवस्था में साधक अपने वास्तविक स्वरूप का बोध करता है और आत्मिक शांति का

अनुभव करता है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य का संतुलन चित्त–शुद्धि और आत्मबोध की प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाता है।

9. आधुनिक संदर्भ में अभ्यास–वैराग्य

आधुनिक युग तीव्र भौतिक प्रगति, तकनीकी विकास और उपभोक्तावादी मानसिकता का युग है। इस परिवेश में मानव जीवन सुविधाओं से तो परिपूर्ण होता जा रहा है, किंतु मानसिक शांति, संतुलन और संतोष निरंतर क्षीण हो रहे हैं।[40] ऐसी स्थिति में योग दर्शन में प्रतिपादित अभ्यास और वैराग्य की अवधारणाएँ आधुनिक जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होती हैं।

उपभोक्तावादी समाज और मानसिक तनाव

उपभोक्तावादी समाज में सुख और सफलता को वस्तुओं, उपलब्धियों और निरंतर उपभोग से जोड़ा जाता है। इससे इच्छाओं की अंतहीन श्रृंखला उत्पन्न होती है, जो व्यक्ति को असंतोष, प्रतिस्पर्धा और तनाव की स्थिति में बनाए रखती है। निरंतर भागदौड़ और अपेक्षाओं के दबाव में चित्त अस्थिर हो जाता है।[41] इस संदर्भ में अभ्यास मन को स्थिर करने और एकाग्रता विकसित करने में सहायक होता है, जबकि वैराग्य व्यक्ति को अनावश्यक इच्छाओं और आसक्तियों से मुक्त कर मानसिक बोझ को कम करता है।

योगिक संतुलन की प्रासंगिकता

आधुनिक जीवन में न तो पूर्ण त्याग संभव है और न ही निरंतर भोग संतुलन प्रदान कर सकता है। योग दर्शन द्वारा प्रतिपादित अभ्यास–वैराग्य का संतुलन एक व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है।[42] अभ्यास व्यक्ति को अनुशासन, नियमितता और आत्म–नियंत्रण सिखाता है, जबकि वैराग्य उसे विवेकपूर्ण उपभोग और सीमित अपेक्षाओं की ओर प्रेरित करता है। इस संतुलन से व्यक्ति जीवन की चुनौतियों का सामना शांत और सजग मन से कर पाता है।

शिक्षा, जीवन–कौशल और मानसिक स्वास्थ्य में उपयोग

शिक्षा के क्षेत्र में अभ्यास और वैराग्य विद्यार्थियों में एकाग्रता, धैर्य और आत्म–अनुशासन विकसित करने में सहायक हैं। जीवन–कौशल के रूप में ये अवधारणाएँ व्यक्ति को तनाव प्रबंधन, भावनात्मक संतुलन और निर्णय–क्षमता प्रदान करती हैं।[43] मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में अभ्यास–वैराग्य का संतुलन चिंता, अवसाद और असंतोष जैसी समस्याओं को कम करने में उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार योग दर्शन की यह सैद्धांतिक अवधारणा आधुनिक समाज में व्यावहारिक और बहुआयामी महत्व रखती है।

10. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि योग दर्शन में *अभ्यास* और *वैराग्य* को चित्तवृत्ति निरोध के दो अनिवार्य तथा परस्पर पूरक साधनों के रूप में स्वीकार किया गया है। अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि केवल अभ्यास या केवल वैराग्य पर आधारित साधना एकांगी और सीमित परिणाम देती है। अभ्यास के बिना वैराग्य निष्क्रियता की ओर ले जा सकता है, जबकि वैराग्य के बिना अभ्यास मानसिक तनाव, अहंकार और असंतुलन को जन्म दे सकता है। अतः योग दर्शन का वास्तविक उद्देश्य दोनों के संतुलित समन्वय से ही साकार होता है।

योग दर्शन में संतुलन की दार्शनिक महत्ता इस तथ्य में निहित है कि यह मानव जीवन को अतिवाद से बचाकर मध्य मार्ग की ओर उन्मुख करता है। अभ्यास और वैराग्य का संतुलन न केवल साधना–पथ को सहज और स्थायी बनाता है, बल्कि व्यक्ति के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को भी सुनिश्चित करता है। यह संतुलन चित्त को शुद्ध कर आत्मबोध की अवस्था तक पहुँचने में सहायक होता है, जहाँ साधक अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करता है। इस प्रकार संतुलन योग दर्शन की मूल आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित होता है।

भविष्य के शोध की संभावनाओं के संदर्भ में यह अध्ययन अनेक नए आयाम प्रस्तुत करता है। अभ्यास और वैराग्य की अवधारणाओं का मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक तथा सामाजिक संदर्भों में अनुप्रयोग एक महत्वपूर्ण शोध–क्षेत्र हो सकता है। इसके अतिरिक्त, आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान में योगिक संतुलन की भूमिका, तथा अन्य भारतीय दर्शनों के साथ अभ्यास–वैराग्य की तुलनात्मक समीक्षा भी भविष्य के शोध के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस प्रकार योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य के संतुलन पर आधारित यह अध्ययन आगे के अंतर्विषयी और व्यावहारिक अनुसंधान के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान करता है।

संदर्भ

1. पतंजलि. *योगसूत्र.* व्यासभाष्य सहित. अनुवाद एवं टीका: स्वामी हरिहरानंद आरण्य. कोलकाता: रामकृष्ण मिशन, 2010.
2. व्यास. *योगभाष्य.* सम्पा॰: स्वामी दिगम्बरजी. लोनावला: कैवल्यधाम, 2005.
3. भोजदेव. *राजमार्तण्ड.* वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2006.
4. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली. *प्रधान उपनिषद.* नई दिल्ली: राजपाल एंड संस, 2014.
5. शंकराचार्य. *ईशोपनिषद भाष्य.* वाराणसी: गीता प्रेस, 2012.
6. कठोपनिषद. गोरखपुर: गीता प्रेस, 2016.
7. मुण्डकोपनिषद. गोरखपुर: गीता प्रेस, 2015.
8. दत्त, डी. एम. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा.* अनुवाद: सुधाकर मालवीय. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2011.
9. शर्मा, चंद्रधर. *भारतीय दर्शन: एक आलोचनात्मक अध्ययन.* वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, 2013.
10. सिंह, अरुण कुमार. "योग दर्शन में अभ्यास और वैराग्य की भूमिका" *भारतीय दर्शन विमर्श,* खंड 12, अंक 2, 2019, पृ. 45–58.
11. शुक्ल, मनीष. "आधुनिक जीवन में योगिक संतुलन की प्रासंगिकता" *योग एवं मानव जीवन,* खंड 8, अंक 1, 2021, पृ. 23–35.
12. पाण्डेय, रेखा. "चित्तवृत्ति निरोध: मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य" *दर्शन एवं संस्कृति,* खंड 5, 2020, पृ. 67–79.
13. वर्मा, सुनील. "वैराग्य की अवधारणा: दार्शनिक एवं व्यवहारिक विश्लेषण." *शोध प्रवाह,* खंड 10, अंक 3, 2022, पृ. 101–112.
14. गीता प्रेस. *श्रीमद्भगवद्गीता (शांकर भाष्य सहित).* गोरखपुर: गीता प्रेस, 2018.
15. यादव, सुरेश. *भारतीय साधना परंपरा.* जयपुर: साहित्य सदन, 2017.
16. मिश्रा, विनोद कुमार. *योग और मानव चेतना.* वाराणसी: संस्कृत भारती, 2016.
17. उपाध्याय, बलराम. *योग दर्शन का व्यावहारिक पक्ष.* वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन, 2015.
18. त्रिपाठी, रामनाथ. *योग में चित्त और वृत्ति.* वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2014.
19. तिवारी, के. एन. *योग एवं मानसिक स्वास्थ्य.* दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, 2020.
20. जोशी, के. एल. *पतंजलि योग का दार्शनिक आधार.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2012.
21. तिवारी, अनुपम. *अभ्यास की दार्शनिक अवधारणा.* प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2018.
22. मिश्रा, सुधीर. *अनुशासन और आत्मसंयम.* वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ, 2017.
23. सिंह, अरविंद. *ध्यान, अभ्यास और मानसिक स्थिरता.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, 2020.
24. शुक्ल, रमेश. *योग साधना में श्रद्धा और निरंतरता.* वाराणसी: संस्कृत भारती, 2019.
25. पाण्डेय, रेखा. *चित्त–शुद्धि की प्रक्रिया.* प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2021.
26. वर्मा, सुनील. *योग दर्शन और व्यक्तित्व विकास.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, 2022.
27. मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद. *योग दर्शन में वैराग्य की अवधारणा.* वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती, 2019.
28. वर्मा, सुनील. *वैराग्य: दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, 2022.
29. पतंजलि. *योगसूत्र.* सूत्र 1.15–1.16. व्यासभाष्य सहित. कोलकाता: रामकृष्ण मिशन, 2010.
30. पाण्डेय, रेखा. *आसक्ति, तृष्णा और चित्त की अस्थिरता.* प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2020.
31. तिवारी, के. एन. *योग, वैराग्य और मानसिक स्वास्थ्य.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, 2021.
32. सिंह, अरुण कुमार. *अभ्यास–वैराग्य का समन्वय: योगिक दृष्टि.* वाराणसी: चौखम्बा ओरिएंटल्स, 2020.
33. शर्मा, चंद्रधर. *भारतीय दर्शन में एकांगी साधना की सीमाएँ.* वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, 2014.
34. मिश्रा, विनोद कुमार. *योग साधना की समस्याएँ और समाधान.* लखनऊ: नवचेतना प्रकाशन, 2018.
35. विवेकानंद, स्वामी. *कर्मयोग.* कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 2017.
36. दत्त, डी. एम. *योग दर्शन में संतुलन का सिद्धांत.* दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012.
37. शुक्ल, मनीष. *अभ्यास–वैराग्य का समन्वित मॉडल.* वाराणसी: भारतीय विद्या प्रकाशन, 2021.
38. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली. *भारतीय दर्शन.* नई दिल्ली: राजपाल एंड संस, 2015.
39. उपाध्याय, बलराम. *चित्त–शुद्धि और आत्मबोध.* वाराणसी: संस्कृत भारती, 2016.
40. सिंह, सीमा. *आधुनिक समाज और योगिक जीवन–दृष्टि.* नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड इंडिया (हिंदी संस्करण), 2020.
41. तिवारी, अनुपम. *उपभोक्तावाद और मानसिक तनाव.* जयपुर: साहित्य सदन, 2019.
42. शुक्ल, मनीष. *आधुनिक जीवन में योगिक संतुलन.* प्रयागराज: लोकभारती प्रकाशन, 2021.
43. पाण्डेय, रेखा. *योग, शिक्षा और जीवन–कौशल.* वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2022.